हिन्दी को अब राष्ट्रभाषा होना ही है

राष्ट्रभाषा को समझने से पहले राष्ट्र, देश और जाति शब्दों को समझना असमीचीन न होगा। वस्तुत : 'राष्ट्र' को अंग्रेज़ी शब्द 'नेशन'(Nation) का हिन्दी पर्याय माना जाता है, किंतु इन दोनों शब्दों में कुछ अंतर है। अंग्रेज़ी में 'नेशन' शब्द से अभिप्राय किसी विशेष भूमि-खंड में रहने वाले निवासियों से है जबकि 'राष्ट्र' शब्द विशेष भूमि-खंड, उसमें रहने वाले निवासी और उनकी संस्कृति का बोध कराता है। राजनीतिक दृष्टि से और भौगोलिक रूप से एक विशेष भूमि-खंड को 'देश' की संज्ञा दी जाती है, किंतु इसका संबंध मानव समाज से नहीं है।'जाति' से अभिप्राय उस मानव समुदाय से है जो सामाजिक विकास के क्रम में पहले 'जन' या 'गण' के रूप में गठित होती है। यह गण समाज अर्थात जन समुदाय आर्थिक आधार पर जुड़ कर एक निश्चित 'जाति' का रूप धारण कर लेता है। इस जाति का अपना प्रदेश और अपनी भाषा होती है। युनान में अनेक गण-राज्य थे जिनमें सामंती व्यवस्था वाली लघु जातियाँ थीं। भारत में भरत, कुरु, पांचाल आदि अनेक गण समाज थे। बौद्ध काल के जनपद या महाजनपद लघु जातियों के ही प्रदेश थे, जिनमें ब्रज, अवध, बुंदेलखंड आदि लघु जातियों वाले अनेक प्रदेश बने जिनकी अपनी-अपनी भाषा है। इन्हींसे हिन्दी भाषी जाति का निर्माण हुआ है। हिन्दी के साथ-साथ मराठी, बंगला,तमिल आदि भाषाएँ बोलने वाली अनेक जातियाँ भी अस्तित्व में आई हैं। कुछ विद्वान जाति का अर्थ 'नेशन' से भी जोड़ते हैं।

राष्ट्र शब्द व्यापक अर्थ लिए हुए है। इसके अंतर्गत देश और जाति दोनों की संकल्पना निहित है। वैदिक काल से ही राष्ट्र शब्द का प्रयोग भूमि, जन और संस्कृति के अंतर्ग्रंथित रूप में चला आ रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो राष्ट्र शब्द में तीन संदर्भों का सम्मिलन होता रहा है – एक, वह भूखंड या भूमि जिसमें मानव समुदाय रहता है, दो, स्वयं मानव समुदाय और तीन, उस मानव समुदाय की संस्कृति। मनुस्मृति (10/61,7/73, 9/254) में राष्ट्र को ज़िला, मंडल, प्रदेश या राज्य, देश या साम्राज्य के साथ-साथ प्रजा, जनता या अधिवासी के अर्थ में परिभाषित किया गया है। इस प्रकार इसमें भूमि, जन और उनकी संस्कृति सभी कुछ समाहित है। अपनी जन्मभूमि के प्रति अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति से भी 'राष्ट्र' की भावना जन्म लेती है। इसी अभिव्यक्ति को रामायण के रचयिता वाल्मीकि ने राम के मुख से कहलाया है –'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।

राष्ट्र से राष्ट्रवाद का उदय हुआ जिसे कुछ विद्वान व्यापारिक पूँजीवाद की देन मानते हैं। वस्तुत : राष्ट्रवाद किसी समुदाय की वह आस्था है जिसके अंतर्गत उस समुदाय का इतिहास, उसकी परंपरा, संस्कृति, भाषा और जातीयता आधार के रूप में समाहित होते हैं। यूरोप का नवजागरण और फ्रांस, इटली, ब्रिटेन आदि देशों का राष्ट्रवाद व्यापारिक पूँजीवाद का परिणाम माना जाता है। भारत में राष्ट्रवाद का विकास ब्रिटिश शासन काल में राष्ट्रीयता की भावना पैदा होने से हुआ। राष्ट्रीयता से राष्ट्र में ऐक्य की भावना जन्म लेती है और राष्ट्रीय एकता के लिए आंतरिक सौहार्द्र एवं सद्भावना, राष्ट्र-भक्ति और संगठन की भावना की आवश्यकता होती है।

विश्व में तीन प्रकार के जातीयता वाले राष्ट्र हैं। जापान, ईरान, पोलैंड, रूमानिया आदि देश एकजातीय राष्ट्र हैं। कनाडा, बेल्जियम आदि द्विजातीय राष्ट्र हैं और भारत, ब्रिटेन, अमेरिका, चीन, फ्रांस, जर्मनी

आदि अनेक देश बहुजातीय राष्ट्र हैं। हर जाति की अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपना साहित्य होता है जिनसे राष्ट्रीय संस्कृति का विकास होता है। भारत बहुजातीय राष्ट्र है जिसमें तमिल, कन्नड़, तेलुगू,मलयालम, बांग्ला, उड़िया, मराठी, गुजराती, पंजाबी, कश्मीरी आदि कई जातियाँ हैं। इनके केंद्र में हिन्दी जाति है जिसके कारण भारत को हिंदुस्तान या हिंदुस्ताँ या हिन्दी कहा जाता है, ब्रिटेन में इंग्लिश जाति की प्रधानता के कारण ही उसे इंग्लैंड भी कहते हैं। इसी संदर्भ में एक महान शायर इकबाल ने अपने कौमी तराना में कहा है – "हिन्दी हैं हम वतन है हिंदुस्ताँ हमारा।" इस प्रकार बहुजातीय राष्ट्र से अभिप्राय उस देश से है जिसमें अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं, अनेक जातियों के लोग रहते हैं और उनमें राष्ट्रीय चेतना होती है। ऐसी चेतना का विकास भारत में हुआ है।

जब कोई भाषा जीवंत, स्वायत्त, मानक, उन्नत और समृद्ध हो कर समूचे राष्ट्र अथवा देश में सार्वजनिक संप्रेषण-व्यवस्था और कार्य-व्यापार में प्रयुक्त होने लगती है, बहुभाषी राष्ट्र में अंतर-प्रांतीय मध्यवर्तिनी भाषा के रूप में विभिन्न भाषाभाषी समुदायों के बीच बृहत्तर स्तर पर संपर्क भाषा की भूमिका निभाती है तथा केंद्रीय एवं राज्य सरकारों में सरकारी कार्यों और पत्रव्यवहार में प्रयुक्त होने लगती है तो वह राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में जन्म लेती है। अमेरिकन भाषाविज्ञानी जोशुआ फिशमैन ने राष्ट्रभाषा और राजभाषा के संदर्भ मेंnationalism (राष्ट्रीयता) और nationism (राष्ट्रता अथवा राष्ट्रिकता) की संकल्पना प्रस्तुत की है। राजभाषा का संबंध राष्ट्रिकता(nationism) से रहता है जो राष्ट्र की आर्थिक प्रगति, राजनैतिक एकता और प्रशासनिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए काम करती है। यह सरकारी कामकाज में प्रयुक्त हो कर जनता तथा शासन के बीच संपर्क पैदा करती है। राष्ट्रभाषा का संबंध राष्ट्रीयता (nationalism) से रहता है, क्योंकि राष्ट्रीयता जातीय प्रमाणिकता एवं राष्ट्रीय चेतना से जुड़ी होती है। राष्ट्रीय चेतना का संबंध सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना से होता है। इसका संबंध 'भूत' और 'वर्तमान' के साथ होता है तथा महान परंपरा के साथ जुड़ा रहता है। वस्तुत : राष्ट्रभाषा राष्ट्र के समाज और संस्कृति के साथ तादात्म्य स्थापित करती है तथा सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा की अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करती है। यह भाषा जनता की निजी, सहज और विश्वासमयी भाषा बन जाती है जिसका प्रयोग राष्ट्रपरक कार्यों में चलता रहता है।

इसी लिए राष्ट्रभाषा का अपने देश की भाषा होना अनिवार्य है, किंतु राजभाषा के लिए अपने देश की भाषा होना आवश्यक नहीं। देश के बाहर की भाषा राजभाषा तो हो सकती है, किंतु राष्ट्रभाषा नहीं। इस प्रकार राष्ट्रभाषा वही होती है जिसमें राष्ट्रीय प्रवृतियाँ सन्निहित होती हैं, अपने देश की परंपरा के प्रति प्रेम होता है, राष्ट्र की संस्कृति के प्रति लगाव होता है और राष्ट्र की एकता के प्रति भावनाएँ होती हैं। अमेरिका के सुविख्यात विद्वान फर्ग्युसन के मतानुसार देश का भाषा नियोजन करते हुए राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय अस्मिता, आधुनिक समाज, प्रौद्योगिकी और अंतरराष्ट्रीय संबंध में से कम-से-कम तीन लक्ष्यों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। ये विशेषताएँ अपने देश की भाषाओं में ही मिल सकती हैं, विदेशी भाषा में नहीं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रभाषा के संदर्भ में यह कहना भी उचित होगा कि जिस भाषा में राष्ट्र-निष्ठा और राष्ट्रीय भावना नहीं होती, वह राष्ट्र भाषा कहलाने की अधिकारी नहीं होती।

प्रश्न उठता है कि हिन्दी में ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण उसे राष्ट्रभाषा माना जा सकता है। साहित्यिक समृद्धि की दृष्टि से हिन्दी का साहित्य श्रेष्ठ है। विश्व के अनेक विद्वानों ने हिन्दी साहित्य की कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि विभिन्न विधाओं की कृतियों का न केवल अनुवाद किया है

बल्कि उनपर शोध और आलोचनात्मक कार्य भी किया है। यद्यपि हिन्दी संस्कृत, तमिल, बंगला और अंग्रेज़ी से अधिक समृद्ध नहीं है तो मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, उड़िया आदि अन्य भारतीय भाषाएँ भी उससे कम नहीं हैं। हिन्दी को भारतीय संविधान में संघ की राजभाषा के पद से सुशोभित किया गया, क्योंकि इसे बोलने और समझने वाले इन सभी भाषाओं से अधिक है। वास्तव में हिन्दी न तो किसी क्षेत्र-विशेष की भाषा है और न ही किसी एक समुदाय की मातृभाषा। वह तो जन-जन की भाषा है,महाजनपद की भाषा है, पूरे राष्ट्र की भाषा है। यद्यपि समय-समय पर इसके स्वरूप में परिवर्तन होते रहे हैं, किंतु यह अपने मानस में विभिन्न भाषाओं और बोलियों के तत्त्वों को संजोती रही है। यह एक ऐसी अजस्र प्रवाहिनी गंगा नदी के समान है जो अन्य भाषाओं एवं बोली रूपी नदियों के सम्मिलन से एक विस्तृत, व्यापक और सुंदर स्रोतस्विनी का रूप धारण करती रही है।

हिन्दी मात्र एक भाषा नहीं,अपितु हमारी राष्ट्रीयता है। हमारे जातीय गौरव का प्रतीक है और भारत अर्थात हिंदुस्तान की पहचान है। इसने लोकभाषा खड़ीबोली का आधार ले कर और अन्य बोलियों से सिंचित हो कर भाषा का रूप धारण किया और फिर भाषा से भारत की संपर्क भाषा बनी और फिर राजभाषा से गौरवान्वित हुई। राजभाषा से राष्ट्र भाषा का स्वरूप ग्रहण कर लिया और फिर अपने बढ़ते हुए विकास की यात्रा में यह राष्ट्रभाषा इतनी गतिशील हो गई है कि विश्व भाषा का स्थान लेने में अग्रसर हो गई। इसी लिए राष्ट्रीयता की भावना से अनुस्यूत राष्ट्रभाषा दो लक्षणों – आंतरिक एकता और बाह्य विशिष्टता से परस्पर गुंथी होती है। समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने की प्रवृति आंतरिक एकता होती है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बाह्य रूप में विशिष्टता सिद्ध करने की प्रवृति होती है। बहुभाषी देश में आंतरिक एकता तभी संभव है जब मातृभाषा के साथ-साथ एक अन्य भाषा संपर्क भाषा (lingua franca) के रूप में उभर कर आए और बाह्य विशिष्टता के लिए यह भी आवश्यक है कि संपर्क भाषा के रूप में राजभाषा की पदवी पाने वाली वह भाषा स्वदेशी ही हो। ये दोनों लक्षण हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बना देते हैं। इसी कारण हिन्दी को स्वतंत्रता-संग्राम के समय से राष्ट्रभाषा का पद देने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं।

समूचे देश की संपर्क भाषा होने के कारण न केवल हिन्दीभाषी संतों और आचार्यों ने जन-जन के हृदय तक हिन्दी में अपना संदेश पहुँचाने का कार्य किया बल्कि दक्षिण और हिंदीतर-भाषी आचार्यों और संतों का भी विशेष योगदान रहा है। दक्षिण के रामानुज, रामानंद,विट्ठल, वल्लभाचार्य, महाराष्ट्र के नामदेव एवं ज्ञानेश्वर, गुजरात के नरसी मेहता तथा स्वामी दयानंद, असम के शंकर देव, पंजाब के गुरु नानक देव आदि आचार्यों और संतों ने देश में जन-जन तक अपना संदेश पहुँचाने और अपने ज्ञान का प्रसार करने के लिए हिन्दी को अपना माध्यम बनाया। हिन्दी की इस सरलता, सहजता और सर्वदेशिकता के परिप्रेक्ष्य में काका कालेलकर ने कहा था कि "हिन्दी सिद्धों की भाषा है,संतों की भाषा है और साधारण जन की भाषा है जिसकी सरलता, सुगमता, सुघड़ता और अमरता स्वयं-सिद्ध है। हिन्दी उत्तर से दक्षिण तक जोड़ने वाली सब से बड़ी कड़ी है।" एक विदेशी अनुसंधानकर्ता एच. डी. कोलबुक ने एक सौ वर्ष पूर्व 'एशियाटिक रिसर्च' में लिखा था कि"जिस भाषा का व्यवहार भारत के प्रत्येक प्रांत के लोग करते हैं जो पढे-लिखे और अनपढ़ दोनों की साधारण बोलचाल की भाषा है और जिसको प्रत्येक गाँव में थोड़े-बहुत लोग समझ लेते हैं, उसी का यथार्थ नाम हिन्दी है।"

एक शोध से जानकारी मिली है कि मुग़ल काल से पूर्व भी मुस्लिम राज्यों में शाही फरमानों में हिन्दी का

प्रयोग होता था। यद्यपि मुग़ल काल में फारसी राजभाषा हो गई थी किंतु यत्र-तत्र हिन्दी का भी प्रयोग होता था। एक शोधकर्ता बुलाखमैन ने सन् 1871 में 'कलकत्ता रिव्यू' में लिखा था, "मुग़ल बादशाहों के शासन काल में ही नहीं, इससे पहले भी सभी सरकारी कागजात हिन्दी में लिखे जाते थे।" स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब,दक्षिण भारत आदि हिंदीतर भाषी राज्यों के नेताओं, राजनेताओं, साहित्यकारों और समाज सुधारकों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा बनाने की माँग की। इनमें राजा राममोहन राय, केशव चंद्र सेन, सुभाष चंद्र बोस, स्वामी दयानंद, सरदार वल्लभ पटेल, लोकमान्य तिलक,लाला लाजपत राय, सुब्रह्मण्यम भारती आदि उल्लेखनीय हैं। सन 1910 में न्यायमूर्ति शारदा चरण मित्र ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष पं. मदन मोहन मालवीय को शुभ संदेश भेजते हुए लिखा था 'हिन्दी समस्त आर्यावर्त की भाषा है। यद्यपि मैं बंगाली हूँ तथापि इस वृद्धावस्था में मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा जिस दिन सारे भारतवासियों के साथ साधु हिन्दी में वार्तालाप कर सकूँ।" भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के महा नायक गुजराती भाषी महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता की लड़ाई में हिन्दी के महत्व को मानते हुए उसे राष्ट्रभाषा बनाने के लिए हिंदीतर भाषी राज्यों में राष्ट्रभाषा प्रचार समितियों का जाल बिछा दिया।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय राजनेताओं ने हिन्दी की महता को स्वीकार करते हुए संविधान में राजभाषा का दर्जा दे कर उसे गौरवान्वित किया। मुंशी-आयंगर फार्मूले के नाम से विख्यात संविधान का भाग 17 है जिसमें 343 से 351 तक अनुच्छेद हैं और साथ में संविधान के परिशिष्ट में अष्टम अनुसूची। इस अवसर पर संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ राजेंद्र प्रसाद ने बड़ी मार्मिकता से कहा था कि "आज पहली बार हम अपने संविधान में एक भाषा स्वीकार कर रहे हैं जो भारत संघ के प्रशासन की भाषा हो गी। हमें समय के अनुसार अपने-आप को ढालना और विकसित करना हो गा। हमने अपने देश का राजनैतिक एकीकरण किया है। राजभाषा हिन्दी देश की एकता को कश्मीर से कन्याकुमारी तक अधिक सुदृढ़ बना सके गी। अंग्रेज़ी की जगह भारतीय भाषा को स्थापित करने से हम निश्चय ही और भी एक-दूसरे के नजदीक आएँ गे।"

राजभाषा का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए हिन्दी को सक्षम माना गया। अत : संविधान के अनुच्छेद 343 में देवनागरी लिपि मे लिखित हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया। व्यापक अर्थ में हिन्दी का संविधानीकरण करना हिन्दी का राष्ट्रीयकरण करना है। इसमें हिन्दी को अखिल भारतीय रूप में देखा गया है जिससे राष्ट्रीय विकास की संभावनाओं में वृद्धि होती है। यह केवल प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा नहीं है, बल्कि राष्ट्रभाषा की भूमिका भी निभा रही है। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने तो उन लोगों की इस बात से कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाना है, इन्कार करते हुए कहा है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है, यह तो पहले से ही राष्ट्रभाषा है। यह सांस्कृतिक जागरण और भारतीय एकता का आधार है। यदि राष्ट्र की संकल्पना को समूचे भारतवर्ष पर लागू हो जाए तो हिन्दी सामाजिक और भावात्मक एकता के लिए राष्ट्रभाषा का कार्य कर रही है और यदि भारत राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों का संघ या समूह माना जाए तो अन्य भारतीय भाषाएँ राष्ट्रभाषा के रूप में कार्य कर रही हैं। वस्तुत : हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित करने का यह अभिप्राय नहीं है कि यह भाषा अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। इसे राजभाषा का दर्जा देने का कारण इस भाषा को बोलने और समझने वाले लोगों की संख्या देश में सबसे अधिक है। इसका अभिप्राय यह भी नहीं है कि

अन्य भारतीय भाषाओं का महत्व कम हो गया। हिन्दी अगर अखिल भारतीय स्तर पर राजभाषा है तो अन्य भारतीय भाषाएँ अपने-अपने राज्य में राजभाषा की भूमिका निभा रही हैं। अत : ये भाषाएँ हिन्दी की सहयोगी भाषा का कार्य कर रही हैं।

संविधान में हिन्दी संबंधी भाषायी अनुच्छेदों में अनुच्छेद 351 सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपबंध है जिसमें कहा गया है कि "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत : संस्कृत से गौणत : अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।" इस अनुच्छेद का अभिप्राय है कि संघ की राजभाषा का स्वरूप क्या हो और वह सभी भाषायी वर्गों के लिए कैसे स्वीकार्य हो ? हिन्दी को विकसित करने और समृद्ध बनाने की ज़िम्मेदारी संघ सरकार की है। इसका स्वरूप समन्वित और उदार हो। भारत की सभी संस्कृतियाँ मिली-जुली हों, उनमें पूर्ण समन्वय हो, जिससे विभिन्न क्षेत्रीय भाषा-समूह यह अनुभव करें कि राजभाषा के रूप में विकसित भाषा उनकी अपनी भाषा के निकट हैं और इस भाषा के निर्माण में उनका भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसी लिए हिन्दी की परिभाषा सांगोपांग और उदार निर्धारित की गई है। यथा,

1. यह भारत की सामासिक संस्कृति अर्थात मिलीजुली संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बने। दूसरे शब्दों में, किसी एक ही समुदाय की संस्कृति की वाहिका न बने।

2. यह अपनी प्रकृति खोए बिना हिंदुस्तानी और आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं के रूप, शैली और पदों को आत्मसात करे अर्थात क्षेत्रीय भाषाएँ राजभाषा हिन्दी का पोषक बने।

3. यदि आवश्यकता पड़ती है तो यह अपने विकास के लिए मुख्य रूप से संस्कृत और गौण रूप से अन्य भाषाओं के शब्द ग्रहण कर सकती है।

यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि हिन्दी भारत की लगभग सभी क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द, शैली आदि अपना कर विकसित हो गी, अर्थात उसमें भारतीय भाषाओं का प्रभाव परिलक्षित हो गा। वास्तव में सभी भारतीय भाषाओं के प्रभाव से विकसित हिन्दी का स्वरूप कृत्रिम नहीं हो गा बल्कि वह सार्वदेशिक रूप ग्रहण करे गा, क्योंकि भाषा समाज की सांस्कृतिक अवधारणाओं और आकांक्षाओं का प्रतीक होती है। इसके अतिरिक्त धर्म-निरपेक्ष होने के कारण हिन्दी का सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनना आवश्यक था।, हालांकि भारतीय संस्कृति अपने-आप में ही सामासिक और मिली-जुली है। भारत की विभिन्न उपसंस्कृतियों के आपस में एक-दूसरे के बहुत निकट होने के कारण उन्हें अलग से पहचानना कुछ कठिन है। तथापि, उनमें पारस्परिक आदान-प्रदान होना आवश्यक है ताकि हिन्दी अपनी समन्वयवादी भूमिका भली-भाँति निभा सके। यह तभी संभव हो गा जब सभी क्षेत्रों में हिन्दी का व्यापक प्रयोग हो और समूचे देश के राष्ट्रीय जीवन में अधिक व्याप्त हो।

संविधान के अनुच्छेद 343 खंड (3) के अधीन राजभाषा अधिनियम, 1963 को लोकसभा में तत्कालीन गृह मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने 13 अप्रैल, 1963 को प्रस्तुत किया था। इसका उद्देश्य था कि 15 वर्ष

की अवधि (26 जनवरी, 1965) के बाद हिन्दी के अलावा अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग जारी रखने के लिए संसद को कानून बनाने का अधिकार दिया जाए। इस विधेयक पर अपना वक्तव्य देते हुए गृह मंत्री ने यह भी कहा कि "हम अंग्रेज़ी कि वर्तमान स्थिति कायम नहीं रख सकते और न ही रहनी चाहिए। कोई राष्ट्रीय औचित्य न हो तब तक अंग्रेज़ी के स्थान पर और देश की अन्य राष्ट्रीय भाषाओं को अपनाने में अनिश्चितता बनाए रखना भी उपयुक्त नहीं है। अनंत कल तक अंग्रेज़ी की वर्तमान स्थिति चलने नहीं दी जा सकती।" काफी लंबे वाद-विवाद के बाद यह विधेयक पारित हुआ और 10 मई, 1963 को उसपर हस्ताक्षर हुए।

इस प्रकार भारत की बहुभाषिक स्थिति होते हुए भी हिन्दी के प्रयोग की संभावनाएँ अधिक थीं, किंतु भारत संघ की यह राजभाषा कार्यालयीन भाषा तक सीमित रह गई है। एक विडंबना और, न्यायपालिका में और वह भी हिन्दी भाषी राज्यों में इसका प्रयोग आज भी अत्यल्प हो रहा है, उच्चतम न्यायालय में तो बिलकुल ही नहीं। सभी कानूनी औपचारिकताएँ अंग्रेज़ी में पूरी की जाती हैं, जनता तक नहीं जातीं। शिक्षा, विशेषकर पब्लिक स्कूलों में और उच्च शिक्षा में, वाणिज्य-व्यापार, विज्ञान, प्रौद्योगिकी आदि अनेक क्षेत्रों में अंग्रेज़ी का वर्चस्व है। वास्तव में संविधान में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा देते हुए हमारे भाषा नियोजन में कुछ कमी रह गई, जिसके कारण इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक एकता की अवधारणा को प्रशासनिक प्रयोजनों तक सीमित कर दिया गया। दूसरा, शासन तंत्र की सुविधा के लिए अंग्रेज़ी को अनिश्चित काल तक जारी रख देश में द्विभाषिक स्थिति पैदा कर दी गई है। उससे हिन्दी की स्थिति नाज़ुक और जटिल बन गई है। तथापि, हिन्दी अपनी सार्वदेशिक प्रकृति के कारण समूचे भारत की संपर्क भाषा की भूमिका निभाए गी और देश की सामासिक संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए सक्षम हो गी।

आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री गोपाल राव एकबोटे ने सन् 1980 में A Nation without a National Language के नाम से एक पुस्तिका का प्रकाशन किया। बाद में उन्होंने इस पुस्तिका में और सामग्री जोड़ी और आचार्य खंडेराव कुलकर्णी के सहयोग से इस परिवर्द्धित पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद कर 'राष्ट्रभाषा विहीन राष्ट्र' पुस्तक का प्रकाशन सन् 1987 में किया। बहुभाषी भारत में हिन्दी को राष्ट्रीय एकात्मकता का निर्माण करने की शक्ति और महत्ता का विवेचन करते हुए कहा कि हिन्दी एक समन्वयवादी और उदार भाषा है। इसके विकास में इसकी अपनी बोलियों, भारतीय भाषाओं और अन्य वैश्विक भाषाओं का विशेष योगदान है। स्वतंत्रता-संग्राम से चली आ रही भावनात्मक पृष्ठभूमि है। एकबोटे जी ने यह भी उल्लेख किया है कि संविधान के अनुछेद 351 में इसके स्वरूप का विवेचन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह हिन्दी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि हिन्दीभाषी क्षेत्रों की भाषा हिन्दी से अलग हो गई है। इस लिए इसे राष्ट्रभाषा का सम्मान मिलना ही चाहिए। भारत का भाषिक भारतीयकरण का स्वावलंबन और भाषा नीति भारतीय जनता की राष्ट्रीय आकांक्षाओं और राजकीय प्रयोजनों के अनुरूप होना ज़रूरी है। यदि हिन्दी को पूर्ण रूप से राष्ट्रभाषा का सम्मान नहीं मिला तो भारत के विकास और प्रगति की संभावना करना व्यर्थ हो जाए गा।

भारत का स्वतंत्रता-संग्राम हमारे संघर्षों का इतिहास है। आज़ादी की लड़ाई में हिन्दी की विशेष भूमिका रही है और इसी लिए महात्मा गांधी ने कहा था कि राष्ट्र की भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए एक जनभाषा का होना आवश्यक है। यह भूमिका केवल हिन्दी या हिंदुस्तानी ही निभा सकती है।

गांधी जी हिन्दी और हिंदुस्तानी में कोई अंतर नहीं मानते थे। इसी लिए हिन्दी न केवल स्वतंत्रता-सेनानियों की राष्ट्र भाषा थी अपितु समस्त जनता ने अपने समूचे स्वतंत्रता-संग्राम में इसे राष्ट्रभाषा ही माना हुआ था। सच्च मानिए उस काल में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा थी। सन् 1906 से सन् 1947 तक अर्थात देश के स्वतंत्र होने तक भारत के हर देशवासी की अभिलाषा थी कि भारत की राष्ट्रीय एकात्माकता के लिए और उसे शक्तिशाली बनाने के लिए एक राष्ट्र-ध्वज, एक राष्ट्रगीत और एक राष्ट्रभाषा का होना नितांत आवश्यक है। इसी संघर्ष, इन्हीं जन-आकांक्षाओं और भावनाओं का सुफल है संविधान का अनुच्छेद 351। इस अनुच्छेद के पीछे अगर इस महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि को भुला दिया गया तो इसकी सार्थकता और प्रयोजनीयता समाप्त हो जाए गी। इस प्रकार अनुच्छेद 351 से यह आशय निकलता है कि संविधान-निर्माता हिन्दी को मात्र राजभाषा तक सीमित नहीं रखना चाहते थे बल्कि उनका लक्ष्य उसे भविष्य में राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाना था, क्योंकि उस समय संविधान सभा के कुछ सदस्य हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने में हिचकिचा रहे थे। इस अनुच्छेद में यह भाव भी निहित है कि हिन्दी के विकास का उद्देश्य न केवल भाषायी दृष्टि से एकात्मकता स्थापित करना है बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक तथा भावनात्मक दृष्टि से भी एकात्मकता स्थापित कर समन्वित संस्कृति का निर्माण भी करना है ताकि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद मिलने में कोई बाधा न आए। इसके साथ-साथ संविधान की अष्टम अनुसूची में उल्लिखित 22 भाषाओं को देने का उद्देश्य यह था कि ये भारतीय भाषाएँ अपना विकास करते हुए हिन्दी भाषा के विकास में भी सहयोग देंगी। इसके संकेत अनुच्छेद 351 में मिल जाते हैं।

राष्ट्रभाषा से अभिप्राय समूचे राष्ट्र या देश की भाषा से है। वह समूचे देश में बोली और समझी जाती हो और उसका यह स्वरूप सदैव अक्षुण्ण बना रहता है। यह न तो उत्तर की या दक्षिण की भाषा होती है और न ही पूर्व की या पश्चिम की भाषा होती है। यह तो समूचे देश की भाषा होती है। यह मात्र विद्वानों और शोधर्थियों की भाषा तक सीमित न रह कर जन-जन की भाषा होती है। विभिन्न भाषा-भाषियों और समुदायों के बीच का काम करती है और उनमें सौहार्द्र और सद्भावना का संबंध बनाए रखती है। समूचे राष्ट्र की सामाजिक-सांस्कृतिक तथा भावनात्मक एकता का निर्माण करती है। इस भाषा की प्रकृति सार्वदेशिकता, सर्वसमावेशिकता, प्राचीन परंपरा, जीवंतता, स्वायत्तता,उदारतावादी दृष्टिकोण, अनेक स्रोतीय शब्द-संवर्धन, मानकीकारण, संप्रेषणीयता एवं बोधगम्यता आदि विशिष्टताओं के कारण अखिल भारतीय हो गई है। इसकी प्रकृति में बिहारी हिन्दी, पंजाबी हिन्दी, हैदराबादी हिन्दी, मुंबइया हिन्दी, कोलकतिया हिन्दी आदि अनेक रूप मिलते है। भाषा के ये रूप उसके व्यापक एवं विशाल प्रयोग के द्योतक हैं। वे सभी भारतीयों के लिए बोधगम्य रहें गे, क्योंकि इन रूपों में उसकी आत्मा एक ही बसती है।

भारत की यह राष्ट्रीय आवश्यकता है कि राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा हो, क्योंकि राष्ट्रभाषा ही देश में राष्ट्रीय चेतना जगा सकती है,राष्ट्रभाषा ही सांस्कृतिक चेतना पैदा कर सकती है, राष्ट्रभाषा ही जन-जन में राष्ट्रवाद की भावना प्रज्वलित कर सकती है। यह भूमिका हिंदी ही निभा सकती है। इसने संविधान की अष्टम अनुसूची में उल्लिखित संस्कृत, बांग्ला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू आदि सभी भारतीय भाषाओं और अरबी, फारसी, तुर्की, अंग्रेज़ी आदि अनेक विदेशी भाषाओं के शब्दों को अपना कर और आत्मसात् कर अपना सर्वसमावेशी रूप धारण कर लिया है। इस राष्ट्रभाषा को सभी

भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं का भी हिन्दी के साथ आत्मसातीकरण एवं समन्वय हो गया है और यह समृद्ध एवं विकसित भाषा बन गई है। शब्द-भंडार, भाव, रूप और शैली की दृष्टि से यह भाषा अखिल भारतीय हिन्दी हो गई है। यह जनपदीय संदर्भ की भाषा से उठ कर राष्ट्रीय संदर्भ की भाषा बन गई है और वैश्विक संदर्भ की भाषा बनने की ओर पूर्णतया अग्रसर है। इस लिए अब समय आ गया है कि हिन्दी को केवल राजभाषा तक सीमित न रख उसे राष्ट्रभाषा के पद पर गौरवान्वित किया जाए।

संपर्क

kgoswami1942@gmail.com

साभार-
वैश्विक हिंदी सम्मेलन, मुंबई
vaishwikhindisammelan@gmail.com
वेबसाइट- वैश्विकहिंदी.भारत / www.vhindi.in